त्रिलोकशिखरादूर्ध्वं जीवपुद्गलयोर्द्वयोः।
नैवास्ति गमनं नित्यं गति-हेतो-रभावतः।।३०४।।

सिद्ध भगवान लोकाग्र में जाते हैं, आगे नहीं जाते, उसका व्यवहार कारण बताते हैं। **गतिहेतु के अभाव के कारण,...** निमित्त। गति हेतु। गति का हेतु, ऐसा जो धर्मास्तिकाय, उसके अभाव के कारण। गति में निमित्त के अभाव के कारण। निमित्तपना उसे नहीं है। वहाँ यह सिद्ध किया, देखो! पहले लोकाग्र में हैं, उस प्रकार उपादान में ले गये थे। यहाँ ऐसा (कहा) दोनों प्रकार से समझाना है न? **गतिहेतु के अभाव के कारण,...** आत्मा पूर्णानन्द की प्राप्ति यहाँ ही अपनी पर्याय में प्राप्त करता है। (वह) लोकाग्र में जाकर स्थित (रहता) है। यह तो उसका उपादान का अपना निजस्वभाव है। अब उसे व्यवहार से वर्णन करते हैं। गति हेतु—इसे जो गति करने का जो निमित्त धर्मास्ति है, उसका वहाँ अभाव है।

सदा (अर्थात् कदापि) त्रिलोक के शिखर से ऊपर जीव... त्रिलोक के शिखर से ऊपर जीव और पुद्गल दोनों का गमन नहीं ही होता। वहाँ आगे उनकी स्थिति है। यह निमित्तपना बतलाया। उपादान को लोकाग्र में रहने की ही स्वयं की योग्यता है। समझ में आया? उसमें तीन प्रश्न उठे थे न? सेठ आये थे तब। धर्मास्तिकायअभावात्। देखो! निमित्त की मुख्यता! आगे धर्मास्तिकाय नहीं है, इसलिए सिद्ध नहीं जाते। वहाँ उनकी लोकाग्र में रहने की स्थिति है, इसलिए आगे नहीं जाते।

मुमुक्षु : यह यहाँ कैसे सिद्ध हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यहाँ कहाँ? पहले सिद्ध हुआ न वह। लोकाग्र में जाए, यह तो पहले सिद्ध किया।

मुमुक्षु : पहले सिद्ध करने के पश्चात् दूसरा उससे उसकी कीमत अधिक होवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा उससे विरुद्ध रहेगा? कीमत तो पहले एकड़े की होगी या दूसरे की? दूसरा है, वह निमित्त है, उसका ज्ञान कराया है। उसमें उसे कुछ नहीं है। पहली इस चर्चा में ही विवाद उठा था। वह तो (जीव) पुद्गल दोनों का गमन नहीं होता, वह तो अपनी योग्यता ऐसी है और वह निमित्त आगे नहीं है, इस प्रकार दोनों का सिद्ध किया है।

गाथा-१८५

णियमं णियमस्स फलं णिद्दिट्ठं पवयणस्स भत्तीए।
पुव्वावरविरोधो जदि अवणीय पूरयंतु समयण्हा।।१८५।।

नियमो नियमस्य फलं निर्दिष्टं प्रवचनस्य भक्त्या।
पूर्वापर-विरोधो यद्यपनीय पूरयन्तु समय-ज्ञाः।।१८५।।

शास्त्रादौ गृहीतस्य नियमशब्दस्य तत्फलस्य चोपसंहारोऽयम्। नियमस्तावच्छुद्धरत्नत्रय-व्याख्यानस्वरूपेण प्रतिपादितः। तत्फलं परमनिर्वाणमिति प्रतिपादितम्। न कवित्वदर्पात् प्रवचनभक्त्या प्रतिपादितमेतत् सर्वमिति यावत्। यद्यपि पूर्वापरदोषो विद्यते चेत्तद्दोषात्मकं लुप्त्वा परमकवीश्वरास्समयविदश्चोत्तमं पदं कुर्वन्त्विति।

जिनदेव-प्रवचन-भक्ति-बल से नियम, तत्फल में कहे।
यदि हो कहीं, समयज्ञ पूर्वापर विरोध सुधारिये॥१८५॥

अन्वयार्थ : [नियमः] नियम और [नियमस्य फलं] नियम का फल [प्रवचनस्य भक्त्या] प्रवचन की भक्ति से [निर्दिष्टम्] दर्शाये गये। [यदि] यदि (उसमें कुछ) [पूर्वापरविरोधः] पूर्वापर (आगे-पीछे) विरोध हो तो [समयज्ञाः] समयज्ञ (आगम के ज्ञाता) [अपनीय] उसे दूर करके [पूरयंतु] पूर्ति करना।

टीका : यह, शास्त्र के आदि में लिये गये नियम शब्द का तथा उसके फल का उपसंहार है।

प्रथम तो, नियम शुद्धरत्नत्रय के व्याख्यानस्वरूप में प्रतिपादित किया गया; उसका फल परम निर्वाण के रूप में प्रतिपादित किया गया। यह सब कवित्व के अभिमान से नहीं किन्तु प्रवचन की भक्ति से प्रतिपादित किया गया है। यदि (उसमें कुछ) पूर्वापर दोष हो तो समयज्ञ परमकवीश्वर दोषात्मक पद का लोप करके उत्तम पद करना।

गाथा - १८५ पर प्रवचन

अब, १८५

णियमं णियमस्स फलं णिद्दिट्ठं पवयणस्स भत्तीए।
पुव्वावरविरोधो जदि अवणीय पूरयंतु समयण्हा।।१८५।।

जिनदेव-प्रवचन-भक्ति-बल से नियम, तत्फल में कहे।
यदि हो कहीं, समयज्ञ पूर्वापर विरोध सुधारिये॥१८५॥

टीका : यह, शास्त्र के आदि में लिये गये नियम शब्द का तथा उसके फल का उपसंहार है। दूसरी गाथा में कहा था। '**मग्गो मग्गफलं ति**' मार्ग और मार्ग का फल, दोनों का यहाँ उपसंहार करते हैं। **प्रथम तो, नियम...** नाम नहीं दिया परन्तु उसका स्वरूप दिया है। **शुद्धरत्नत्रय के व्याख्यानस्वरूप में प्रतिपादित किया गया;...** समझ में आया? पहले से वहाँ ऐसा लिया था कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र, वह नियम है। तीसरी गाथा में। '**णियमेण य जं कज्जं।**' जो नियम से जीव को सुख के लिये करनेयोग्य है, उसे नियम कहा जाता है। आनन्द की प्राप्ति के लिये करनेयोग्य वह ज्ञान, दर्शन और चारित्र, उसे नियम कहते हैं। समझ में आया? ऐसा नियम लेना और नियम पालना न, वे यह। समझ में आया?

आत्मा का स्वभाव चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्णानन्द, उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा और उसमें रमणता, यह नियम। इस नियम का कर्तव्य इसे करना चाहिए, यह नियम उसे करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ सार शब्द विपरीत का अभाव बताने के लिये (कहा था)। बाकी नियम अर्थात् सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र। ज्ञान, दर्शन और चारित्र, यह नियम। समझ में आया? ज्ञान से बात उठाई है। नियम अर्थात् ज्ञान, दर्शन और चारित्र। अर्थात् कि शुद्ध रत्नत्रय। व्यवहाररत्नत्रय के निषेध के लिये शुद्धरत्नत्रय कहा। शुद्धरत्नत्रय अर्थात् आत्मा ज्ञान और आनन्द के पूर्ण स्वभाव से भरपूर पदार्थ है, उसके आश्रय से हुआ ज्ञान, दर्शन और चारित्र, इसका नाम शुद्धरत्नत्रय। शुद्धरत्नत्रय कहने से अशुद्ध रत्नत्रय व्यवहार का इसमें निषेध होता है। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प राग, पंच महाव्रत का विकल्प राग, शास्त्र पठन का राग, वह शास्त्र ज्ञान, वह विकल्प ज्ञान, इन तीनों का निषेध करने के लिये सार शब्द जोड़ा है, ऐसा आया

था न पहले ? तीसरी गाथा में। यहाँ वह निषेध की बात न लेकर, अस्ति से बात ली है।

प्रथम तो,... '**तावत्**' है न ? '**नियमस्ताव**' है न ? ऐसा है न ? '**नियमस्तावच्छुद्ध-रत्नत्रयव्याख्यानस्वरूपेण प्रतिपादितः**' अरे! भगवान आत्मा को पूर्ण आनन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति के उपायरूपी शुद्ध रत्नत्रय। यह उसका कारण और यह उसका उपाय। वह शुद्ध रत्नत्रय अर्थात् कि आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप है, उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा और उसकी रमणता (हो), उसका नाम शुद्ध रत्नत्रय मोक्ष का उपाय नियम कहा जाता है। कहते हैं कि उसके **व्याख्यानस्वरूप में प्रतिपादित किया गया;...** शुद्ध रत्नत्रय के कथन के लिये यह सब कहा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? शुद्ध रत्नत्रय के व्याख्यानस्वरूप प्रतिपादित करने में आया है। पहला व्यवहार आया हो। होवे, उसे बतलाया हो, परन्तु इसकी प्राप्ति के लिये उसका वर्णन किया गया है।

उसका फल परम निर्वाण... भगवान आत्मा के पूर्ण स्वभाव का अन्तर्मुख स्वसंवेदन ज्ञान, अन्तर के आश्रय की श्रद्धा और अन्तर में रमणता, इसका फल परम निर्वाण है। कहो, समझ में आया ? उसका फल उस समय आनन्द आवे, ऐसा न लेकर... समझ में आया ? शुद्ध रत्नत्रय की परिणति, वह आनन्दरूप है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि वह शुद्ध रत्नत्रय कारणरूप है, उपायरूप है, इसलिए उसका फल, वह निर्वाण है। समझ में आया ? उस समय आत्मा के स्वभाव का भान, श्रद्धा और रमणता हो, उस समय फलरूप तो आनन्द का वेदन है। वह यहाँ लेना नहीं। वह तो स्वयं शुद्ध रत्नत्रय में आनन्द का फल शामिल आ गया। समझ में आया ? यह तो यहाँ अन्तर्मुख की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की रमणता द्वारा निर्वाण अर्थात् पूर्णानन्द की प्राप्ति उसका फल है। आहाहा!

उसका फल परम निर्वाण के रूप में... यह ऐसा कहा कि **प्रतिपादित किया गया।** उसके फल का भी इसमें कथन किया गया है। **यह सब कवित्व के अभिमान से नहीं किन्तु प्रवचन की भक्ति से...** पाठ में है न ? '**पवयण**' भक्ति से। अहो! प्रवचन भगवान के कहे हुए भाव और उनके कथन, उनकी भक्ति से प्रतिपादन किया गया है। समझ में आया ? मोक्षमार्ग की भक्ति, प्रवचन की भक्ति के लिये यह नियमसार कहा गया है। प्रवचन की भक्ति से कहा गया है। कहते हैं, हम कुछ जानते हैं, इसके लिये कहा गया है, हमें ऐसा आता है, इसलिए हमारी प्रसिद्धि करने के लिये हम यह कहते हैं—ऐसा

नहीं है। मात्र भगवान आत्मा के जो शुद्ध रत्नत्रय और उसके कथन भगवान के, उनकी भक्ति से हम तो कहते हैं। समझ में आया? हम तो उनके सेवक हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : सेवक तो दोष है, राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सेवक अर्थात् पूर्ण प्राप्ति के कारण की सेवना, यही भगवान की सेवना है। समझ में आया? पूर्ण आनन्द की, शान्ति की प्राप्तिरूपी मुक्ति, उसके कारण का सेवन, वही भगवान का सेवन है।

मुमुक्षु : हम तो भगवान के...

पूज्य गुरुदेवश्री : उन भगवान का... भगवान ने कहा है, उसके हम साधक हैं। साधनेवाले हैं। उसके... हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **यदि (उसमें कुछ) पूर्वापर दोष हो...** आगे-पीछे कोई शब्द में व्याकरण आदि नियमों में फेरफार हों, वह तो समयसार में (५वीं गाथा में) आया है। '**छलं ण घेत्तव्वं**' इन शब्दों में अन्तर होवे तो छल (ग्रहण) नहीं करना। वहाँ तुम्हारे इतना सुधार लेना। वहाँ सुधार लेना कहा है। वहाँ उसे कहा कि तू वहाँ इस बात में अटकना नहीं। हमें तो भगवान आत्मा आनन्द की बात करना है। उसका अनुभव करना। समझ में आया? यह कोई पण्डिताई और कोई कवित्त की चतुराई से कहने में आया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! देखावो-देखावो। क्या कहते हैं हिन्दी में? दिखावा, प्रदर्शन करना। दिखावा कि हम ऐसे चतुर हैं, ऐसा दिखावा करने के लिये नहीं कहा है। दुनिया में हमारी प्रसिद्धि पाने के लिये कहा है, ऐसा हम नहीं कहना चाहते। मात्र वीतराग का मार्ग ऐसा आनन्दस्वरूप है, सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप है, उनके आगमों में ऐसा कहा है। उसके प्रेम और भक्ति से हम यह बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

उसमें कोई शब्दों में, व्याकरण में, नियम में, कालभेद में, धातु आदि में किसी शब्द में अन्तर हो **तो समयज्ञ...** आगम के जानकार **परमकवीश्वर दोषात्मक पद का लोप...** है न? उसके पद की—दोषात्मक की व्याख्या है। वस्तु का अनुभव जो कहते हैं, वह तो हमारे बराबर है। उसमें पदों, शब्दों की किसी शैली में आगे-पीछे शब्द... होवे उसका **पद का लोप करके उत्तम पद करना।** पद को अच्छा करना, तुम ऐसे बहुत होशियार कविश्वर हो तो। समझ में आया? पदों की रचना में... अब ३०५।

श्लोक - ३०५

[अब, इस १८५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मालिनी)

जयति नियमसारस्तत्फलं चोत्तमानां,
हृदय-सरसि-जाते निर्वृतेः कारणत्वात्।
प्रवचनकृत-भक्त्या सूत्रकृद्भिः कृतो यः,
स खलु निखिलभव्यश्रेणिनिर्वाणमार्गः ।।३०५।।

(वीरछन्द)

मुक्ति का कारण होने से नियमसार अरु उसका फल।
बुध पुरुषों के हृदय कमल में जो नित रहता है जयवन्त॥
सूत्रकार श्री कुन्दकुन्द ने भक्तिपूर्वक रचा इसे।
वास्तव में वह भव्य जनों को मोक्ष-महल का मारग है॥३०५॥

[श्लोकार्थः—] मुक्ति का कारण होने से नियमसार तथा उसका फल उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में जयवन्त है। प्रवचन की भक्ति से सूत्रकार ने जो किया है, (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने जो यह नियमसार की रचना की है), वह वास्तव में समस्त भव्यसमूह को निर्वाण का मार्ग है।३०५।

श्लोक - ३०५ पर प्रवचन

[अब, इस १८५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:] (श्लोक) ३०५

जयति नियमसारस्तत्फलं चोत्तमानां,
हृदय-सरसि-जाते निर्वृतेः कारणत्वात्।

प्रवचनकृत-भक्त्या सूत्रकृद्भिः कृतो यः,
स खलु निखिलभव्यश्रेणिनिर्वाणमार्गः ।।३०५।।

श्लोकार्थ - मुक्ति का कारण होने से नियमसार... यह सार यहाँ लिया है। वह नियम पाठ में था। ...नाम है न इसलिए। **मुक्ति का कारण...** परम शान्ति और परम आनन्द की प्राप्ति। अरे! संसार के दुःखों से थका हो, उसके (लिये बात है)। संसार के स्वर्गादि के सुख भी दुःख हैं। आहाहा! उनमें से जिसे थकान लगी हो कि... आहाहा! कि प्रभु! ऐसे दुःख अब सहन नहीं किये जाते। भक्ति में नहीं आया था? कल आया था। ऐसे दुःख से जिसे मुक्त होना हो, उसे यह **मुक्ति का कारण होने से नियमसार...** कहा गया है।

तथा उसका फल उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में जयवन्त है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह क्या कहा? मुक्ति का कारण ऐसा जो नियमसार, (वह) ज्ञानी के हृदय में विराजमान जयवन्त वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? परम आनन्द और परम ज्ञान की मूर्ति प्रभु के सन्मुख का ज्ञान, दर्शन और चारित्र ज्ञानी के हृदय में वर्तमान जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहते हैं। विद्यमान है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी अध्धर से बात करते हैं, ऐसा नहीं है; है हमारे पास, ऐसा कहते हैं।

मुक्ति का कारण होने से नियमसार तथा उसका फल उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में जयवन्त है। मोक्ष कैसा है, उसका भी हमें ज्ञान वर्तता है। आहाहा! **प्रवचन की भक्ति से सूत्रकार ने जो किया है...** दिव्यध्वनि—भगवान की वाणी, उसकी जो भक्ति। ठीक! इससे सूत्रकार कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, जो यह किया है **वह वास्तव... (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने जो यह नियमसार की रचना की है),...** लो! नियमसार किया है, रचा है - ऐसा कहा। निमित्तपना बतलाते हैं, निमित्तपना बतलाते हैं। वाणी तो वाणी के कारण से रचती है, परन्तु भाव की रचनावाले जो थे, उन्होंने इस वाणी की रचना की, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। समझ में आया? अन्तर में वस्तु के पूर्ण स्वभाव के आनन्द के वेदन की दशा में थे। उसमें वे थे। उसकी रचना उन्होंने की थी परन्तु ऐसी स्थितिवान प्राणी, उसे अनुसरती वाणी की रचना भी की, ऐसा कहने में व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? कहनेवाले ने तो नियमसार रचा है। अर्थात् अपनी पर्याय निर्मल शुद्ध स्वभाव के आश्रय की उन्होंने रची है, वह उन्होंने नियमसार रचा है।

भावनियमसार (रचा है)। और उसे अनुसरण करती वाणी निकली, उसे हम निमित्त से कहते हैं कि हमने उसे रचा। समझ में आया? आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य और ये मुनि दोनों दिगम्बर सन्त गजब काम करते हैं! इसकी बात करते कि नियमसार हमने रचा है। हमारा भगवान राग से रहित है। सार का अर्थ है न? ऐसा निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहा है न पहले? वर्तमान है। आहाहा! और उसे अनुसरण करके वाणी निकली। वाणी, वाणी के कारण से बोली जाती है परन्तु निमित्तपना है, इसलिए हम इसे रचते हैं, इसे रचते हैं, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

प्रवचन की भक्ति से सूत्रकार ने जो किया है (अर्थात् श्रीमद्-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने जो यह नियमसार की रचना की है), वह वास्तव में समस्त भव्यसमूह को... समस्त भव्य समूह को। आहाहा! समस्त भव्य समूह को। भव्य के समूह—ढ़ेर, उसे **निर्वाण का मार्ग है।** नियम है। उसे नियम-मोक्ष का मार्ग / निर्वाण का मार्ग यह है। सन्तों ने रचा और वाणी की रचना में निमित्त, इसलिए उन्होंने वाणी रची है, ऐसा कहकर, भव्य समूह को यह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! यह १८५ गाथा हुई।

गाथा-१८६

ईसाभावेण पुणो केई णिंदंति सुन्दरं मग्गं।
तेसिं वयणं सोच्चाऽभत्तिं मा कुणह जिणमग्गे।।१८६।।

ईर्ष्या-भावेन पुनः केचिन्निन्दन्ति सुन्दरं मार्गम्।
तेषां वचनं श्रुत्वा अभक्तिं मा कुरुध्वं जिनमार्गे।।१८६।।

इह हि भव्यस्य शिक्षणमुक्तम्। केचन मन्दबुद्धयः त्रिकालनिरावरणनित्यानन्दैकलक्षण-निर्विकल्पकनिजकारणपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानपरिज्ञानानुष्ठानरूपशुद्धरत्नत्रयप्रतिपक्ष-मिथ्यात्वकर्मोदयसामर्थ्येन मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रपरायणाः ईर्ष्याभावेन समत्सरपरिणामेन सुन्दरं मार्गं सर्वज्ञवीतरागस्य मार्गं पापक्रियानिवृत्तिलक्षणं भेदोपचाररत्नत्रयात्मकमभेदानुपचार-रत्नत्रयात्मकं केचिन्निन्दन्ति, तेषां स्वरूपविकलानां कुहेतुदृष्टान्तसमन्वितं कुतर्कवचनं श्रुत्वा ह्यभक्तिं जिनेश्वरप्रणीतशुद्धरत्नत्रयमार्गे हे भव्य मा कुरुष्व, पुनर्भक्तिः कर्तव्येति।

जो कोई सुन्दर मार्ग की निन्दा करे मात्सर्य में।
सुनकर वचन उसके अभक्ति न कीजिये जिनमार्ग में॥१८६॥

अन्वयार्थ : [पुनः] परन्तु [ईर्षाभावेन] ईर्षाभाव से [केचित्] कोई लोग [सुन्दरं मार्गम्] सुन्दर मार्ग को [निन्दन्ति] निन्दते हैं [तेषां वचनं] उनके वचन [श्रुत्वा] सुनकर [जिनमार्गे] जिनमार्ग के प्रति [अभक्तिं] अभक्ति [मा कुरुध्वम्] नहीं करता।

टीका : यहाँ भव्य को शिक्षा दी है।

कोई मन्दबुद्धि त्रिकाल-निरावरण, नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है—ऐसे निर्विकल्प निजकारणपरमात्मतत्त्व के सम्यक्-श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप शुद्धरत्नत्रय से प्रतिपक्ष मिथ्यात्वकर्मोदय के सामर्थ्य द्वारा मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रपरायण वर्तते

हुए ईर्षाभाव से अर्थात् मत्सरयुक्त परिणाम से सुन्दरमार्ग को—पापक्रिया से निवृत्ति जिसका लक्षण है, ऐसे भेदोपचार-रत्नत्रयात्मक तथा अभेदोपचार-रत्नत्रयात्मक सर्वज्ञवीतराग के मार्ग को—निन्दते हैं, उन स्वरूपविकल (स्वरूपप्राप्ति रहित) जीवों के कुहेतु-कुदृष्टान्तयुक्त कुतर्कवचन सुनकर जिनेश्वरप्रणीत शुद्धरत्नत्रयमार्ग के प्रति, हे भव्य! अभक्ति नहीं करना, परन्तु भक्ति कर्तव्य है।

गाथा - १८६ पर प्रवचन

अब यहाँ १८६

ईसाभावेण पुणो केई णिंदंति सुन्दरं मग्गं।
तेसिं वयणं सोच्चाऽभत्तिं मा कुणह जिणमग्गे।।१८६।।

जो कोइ सुन्दर मार्ग की निन्दा करे मात्सर्य में।
सुनकर वचन उसके अभक्ति न कीजिये जिनमार्ग में॥१८६॥

ऐसा सुन्दर मार्ग, उसकी कोई निन्दा करे। यह स्वार्थ के पुतले, हम हमारा करते हैं... हम हमारा करते हैं... ऐसी निन्दा करनेवाले। करो। परन्तु स्वरूप की भक्ति में शिथिलता लाने नहीं देना। समझ में आया? वापस जिनमार्ग लिया, निश्चय। अन्त में स्वयं ने यह लिया है। शुद्धरत्नत्रयमार्ग के प्रति अभक्ति नहीं करना, ऐसा कहा है न? अन्दर मार्ग की व्याख्या करते हुए निश्चय-व्यवहार कहा। समझ में आया?

टीका : यहाँ भव्य को शिक्षा दी है। भव्य को शिक्षा दी है। योग्य जीव को कहा गया है। आहाहा! **कोई मन्दबुद्धि...** ऐसा नियम—मोक्ष का मार्ग, शुद्धरत्नत्रय स्वद्रव्य के आश्रय से होनेवाली दशा—ऐसा मार्ग, उसे नहीं समझनेवाले, ईर्ष्या करनेवाले। समझ में आया? कहा था। बहुत वर्ष पहले यहाँ एक प्रश्न किया था। (संवत्) १९९२ के वर्ष पहले। यह सिद्ध भगवान क्या करते हैं? कहा, सिद्ध भगवान किसी का कुछ नहीं करते। वे तो अपने आनन्द के अनुभव को करते हैं। (तो प्रश्नकर्ता कहता है), अरे! ऐसे सिद्ध! यहाँ हम भी कुछ थोड़ा-बहुत दूसरों का करते हैं और वे बड़े हुए और कुछ नहीं करते? अरे! भगवान! बापू! तुझे खबर नहीं है। तब हमारे ऐसे सिद्ध नहीं चाहिए। परन्तु था कहाँ? भाई! समझ में आया? हीराभाई के मकान में प्रश्न किया था। वे तो बेचारे गुजर

गये। ... मुम्बई। उन्हें कुछ धर्म-बर्म की खबर नहीं होती। बस, सामने प्रसिद्ध होना है। वे कहें, यह सिद्ध भगवान पूर्ण होकर, परमात्मा होकर क्या करते हैं ? कहा, पर का कुछ नहीं करते, अपने पूर्ण आनन्द का अनुभव करते हैं। ले, ऐसे सिद्ध! बड़े हुए और किसी का कुछ नहीं करते, वे बड़े किसके ? ऐई! पण्डितजी! हम भी यहाँ गाँव में, देश में या परिवार में कुछ सर्वत्र जहाँ हो वहाँ सुधारा-वधारा करने के लिये प्रयत्न करते हैं। वे कुछ नहीं करते किसी का ? कहा, हराम है कुछ करे तो किसी का। तुम कुछ करते नहीं। यहाँ भी कौन करता है किसी का ? वह तो व्यर्थ में अज्ञानी मूढ़ मानता है। बहियाँ-वहियाँ, नामा-बामा देखता होगा या नहीं यहाँ ? यह सब अभी तक क्या किया तब ? ऑडीटर हुए न सब। ऑडीटर नाम। ऐ... ! यह हमारे मन्त्री हैं। कितना काम किया पोरबन्दर में, देखो न! ...माँ, काका और काकी दोनों गुणगान करते थे। हमारे पालेज में एक काका-काकी कहलाते थे। मुसलमान थे। पुराने व्यक्ति। गाँव में पहले आये हुए, इसलिए वे काका-काकी कहलाते थे। हमारे घर के पास ही थे। मुसलमान थे। पूरे गाँव में एक काका-काकी कहलाये। इसी प्रकार यह पोरबन्दर में वे कहलाते थे।

मुमुक्षु : पोरबन्दर तो बहुत बड़ा गाँव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य। वह तो छोटा। पालेज अर्थात् वहाँ क्या। और तब तो साधारण था। तब तो साधारण थे। अभी तो बढ़ गया है। तब तो साधारण था। तब काका-काकी कहलाते थे। और यह तो बड़े पोरबन्दर के। ये तो रहे नहीं, हों! नहीं ? काकी तो चल गयी। यह एक रहे। किसकी काकी और किसका काकीड़ा ? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, हे भव्य जीव! तेरे स्व प्रयोजन-मार्ग को साधता (हो और) दुनिया ऐसा कहे कि यह तो अकेला स्वार्थी है। किसी का कुछ करना नहीं और हम धर्मी! किसी का कुछ करना नहीं। अपना पेट तो कुत्ता भी भरता है, ऐसा और एक कहता था। ऐई! चेतनजी! यह तो चेतनजी को खबर है, नाम क्या होगा। यह आया था। (संवत्) १९९२ में वहाँ आया था। वह कहे, कुत्ता भी पेट भरता है। अरे! प्रभु! क्या कहते है ? भाई! तू क्या कहता है ? साधु, हों! नामधारी। अपना पेट तो कुत्ता भी भरता है। पर का करे वे सही। वाह रे वाह!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे होती होगी ? ठीक ! चेतनजी है न। उनका नाम तुम्हारे जैसा नाम है, ऐई ! खबर है ? हिम्मतलाल जेठालाल आये हैं। वे आज कहते थे, चन्दुभाई कहते थे। आहाहा !

यह भगवान अपना करने के अलावा... यह अज्ञानरूप से राग-द्वेष और मिथ्यात्व, वह अपने लिये करता है। वह कोई पर का करता है ? आहाहा ! परन्तु करे किसका ? जगत के तत्त्व अनन्त, अनन्तरूप परिणम रहे हैं। अनन्तरूप रहकर अनन्तरूप, द्रव्यरूप और पर्यायरूप रहे हुए हैं। अब उसमें अनन्त में से एक दूसरे का करे तो अनन्त मिट जाते हैं। अनन्त की संख्या नहीं रहती।

कहते हैं कि **कोई मन्दबुद्धि त्रिकाल-निरावरण, नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है...** अब यहाँ उठाते हैं, देखो ! इसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र लिया। यहाँ श्रद्धा से शुरु करते हैं। **त्रिकाल-निरावरण,...** मोक्षमार्ग तो यह है। नियम, वह मोक्षमार्ग है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र। वहाँ ज्ञान-दर्शन-चारित्र को मोक्षमार्ग कहा। यहाँ श्रद्धा से कहा। त्रिकाल निरावरण भगवान आत्मा **नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण...** आहाहा ! भगवान का-आत्मा का लक्षण नित्य आनन्द। अतीन्द्रिय नित्य आनन्द जिसका लक्षण है। समझ में आया ?

कोई मन्दबुद्धि... इतना। अब **त्रिकाल-निरावरण, नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है...** एक लक्षण है। देखा ! यहाँ ज्ञान लक्षण न लेकर आनन्द का लक्षण लिया है। आहाहा ! समझ में आया ? अतीन्द्रिय आनन्द में विराजमान आत्मा है। यह उसका लक्षण है। आहाहा ! राग और पुण्य के परिणाम उसका लक्षण नहीं है। यह बतलाना हो, तब दूसरा बतलाते हैं। आता है न पंचास्तिकाय में ? उत्पाद-व्यय-ध्रुव लक्षण। तीन लक्षण है। प्रत्येक पर्याय, प्रत्येक उत्पाद-व्यय यह भी उसका लक्षण है। परन्तु वह तो एक सामान्य रूप बताना है। यह तो खास जिसे भिन्न पाड़कर बतलाना है। समझ में आया ? जिसे भिन्न पड़ना है और भिन्न पाड़कर बतलाना है। आहाहा !

त्रिकाल प्रभु निरावरण वस्तु है। वस्तु को आवरण कैसा ? ऐसी चीज़ जो सत्त्व, सत्.. सत्.. सत्.. सत् का सत्त्व। समयसार में तो यह आया था। शुद्ध और अशुद्ध जीव का सत्त्व है। उसके सत्त्व में है। आया था या नहीं ? वह तो पर्याय बताने को। यह तो द्रव्य बताना है। समझ में आया ? शुद्ध-अशुद्ध पर्याय भी जीव का सत्त्व है। सत्त्व अर्थात् इसके

सत्त्व के सत् में होता है, किसी पर में नहीं होता। परन्तु यहाँ तो द्रव्य को बताना है, वस्तु कही है। वह तो पर्याय को बतानी थी।

अहो! तीनों काल निरावरण प्रभु विराजता है। और **नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है...** यह सुख और आनन्द, वही जिसका लक्षण है और आनन्द के लक्षण से वह आत्मा लक्षित हो सकता है। आहाहा! **ऐसे निर्विकल्प निजकारणपरमात्मतत्त्व के...** ऐसे त्रिकाल निरावरण और नित्य आनन्द लक्षण, ऐसे निर्विकल्प अभेद निज कारणपरमात्मा, अपना कारणपरमात्मा वस्तु, ऐसे **कारणपरमात्मतत्त्व के सम्यक्-श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप...** ऐसा अपना परमात्मा कारणस्वरूप भगवान, उसकी सच्ची अन्तर श्रद्धा, उसका आत्मज्ञान, ऐसे आत्मा में अनुष्ठानरूप—आचरणरूप वह चारित्र। अनुष्ठानरूप **शुद्धरत्नत्रय से...** ऐसे **सम्यक्-श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप...** ऐसा क्या? **शुद्धरत्नत्रय...** ऐसे **शुद्धरत्नत्रय से...** अब इतनी व्याख्या कही। उससे विरुद्धवाले तेरी निन्दा करे तो अभक्ति करना नहीं, ऐसा कहा। **प्रतिपक्ष...** यहाँ उसके प्रतिपक्ष यह आया। इसमें और यहाँ प्रतिपक्ष यह लेने जाए तो वह मिलता नहीं नियमसार। व्यवहार के परिहार के लिये।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो इसकी वस्तु की बात है। व्यवहार के परिहार के लिये विकल्प है न? नियमसार। व्यवहार का परिहार अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, उसके परिहार के लिये सार शब्द जोड़ा है। वहाँ तो उसकी विकारी पर्याय से विरुद्ध ऐसा।

यहाँ तो कहते हैं कि **शुद्धरत्नत्रय से प्रतिपक्ष मिथ्यात्वकर्मोदय...** वाले, ऐसा कहते हैं। जिस जगह हो वहाँ... तब वहाँ वे शोर मचावे या नहीं, यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ ऐसा लेना मिथ्यात्व और दर्शन, यह विरोध है। उसके परिहार के लिये मोक्षमार्ग कहा है। ऐसा कहते हैं। यहाँ तो विरोध करनेवालों को लेना है न? वह तो विरोधपर्याय से रहित नियमसार है, ऐसा कहना है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा कारणपरमात्मा अपना भगवान नित्यानन्द प्रभु, शाश्वत् वस्तु की सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान और अनुष्ठानरूप शुद्धरत्नत्रय जो मोक्ष का मार्ग है, ऐसे रत्नत्रय से विरुद्ध **मिथ्यात्वकर्मोदय के सामर्थ्य द्वारा...** विपरीत ऐसा दर्शनमोह, उसके उदय की सामर्थ्य द्वारा। उसमें जुड़ते वे। उसमें जुड़ते हैं।

मुमुक्षु : उदय का जोर आया अवश्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया, कर्म उदय है न? उसके उदय का सामर्थ्य कहलाता है। उसके उदय का सामर्थ्य। आत्मा का सामर्थ्य कहाँ है?

मिथ्यादर्शन- जिसे मिथ्याश्रद्धा है, मिथ्याज्ञान है, मिथ्याचारित्र में परायण है। **परायण वर्तते हुए...** आहाहा! **ईर्षाभाव से अर्थात् मत्सरयुक्त परिणाम से...** ईर्ष्या—हम ऐसे जाननेवाले हैं, हम ऐसे जाननेवाले। यह तुम सब स्वार्थ के पुतले, (कि) हम हमारे आत्मा का करते हैं, हम आत्मा का करते हैं, ऐसा करके इस सुन्दर मार्ग की कोई निन्दा करे। मत्सरयुक्त से ईर्ष्याभाव से। ऐसे **परिणाम से सुन्दरमार्ग को—** सुन्दर मार्ग की जरा व्याख्या करते हैं।

'णिंदंति सुदरं मग्गं' पापक्रिया से निवृत्ति जिसका लक्षण है, ऐसे भेदोपचार-रत्नत्रयात्मक... पहले यह व्यवहार लिया। मुनि का मार्ग। पाप के परिणाम से जिसे निवृत्ति है। अहिंसादि के परिणाम, व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम हैं उसे। **पापक्रिया से निवृत्ति जिसका लक्षण है, ऐसे भेदोपचार-रत्नत्रयात्मक...** व्यवहाररत्नत्रय। व्यवहाररत्नत्रय ऐसा जो उसका विकल्प और अभेद उपचार रत्नत्रय, वह निश्चय। अभेद उपचार रत्नत्रयस्वरूप **सर्वज्ञ-वीतराग के मार्ग को—** देखो! **भेदोपचार-रत्नत्रयात्मक तथा अभेदोपचार-रत्नत्रयात्मक सर्वज्ञ-वीतराग के मार्ग को—** आहाहा! दोनों का प्रमाणज्ञान कराया है न? व्यवहार से ऐसा होता है। आराधना है निश्चय, परन्तु उसमें व्यवहार ऐसा होता है। जब तक पूर्ण वीतराग नहीं। वीतराग का व्यवहार अलग ही प्रकार का (होता है)।

देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत के विकल्प, उसमें सावद्य का त्याग, हिंसा का त्याग। बाह्य, ऐसा व्यवहाररत्नत्रयस्वरूप और अभेद उपचार रत्नत्रयस्वरूप **सर्वज्ञवीतराग के मार्ग को—निन्दते हैं, उन स्वरूप...** मन्दबुद्धि (शब्द था) पहले से। कोई मन्दबुद्धि इस प्रकार से निन्दा करते हैं। समझ में आया? हमारा कुछ नहीं करे, वे वीतराग कैसे? भगवान किसके बड़े? ऐसा कहे। बड़े हों तो बहुतों का करे न? लो! यह तो हम हमारा करते हैं। हम मोक्ष के मार्ग में बड़े हैं। यह नहीं। ऐसा नहीं होता। दुनिया का करना चाहिए। और कदाचित् दुनिया के लिये भव करना पड़े, तो भव

करना। समझ में आया? यह बात आ गयी है। समझ में आया? जगत के हित के लिये भव करना पड़ता हो तो हम भव करेंगे।

मुमुक्षु : इसमें भी जगत का कल्याण है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे जगत का धूल में भी कल्याण नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : .... और दूसरे को लाभ होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी किसी को नहीं होता। किसे लाभ हो? स्वयं अपना करे, उसमें फिर विकल्प कोई आ गया और तीर्थंकरगोत्र बँध गया तो सामनेवाले के निमित्त होता है। वह भी वह करे, तब निमित्त हो या नहीं? इससे वहाँ कहाँ होता है? समझ में आया?

कहते हैं कि, अरे..! ऐसे मन्दबुद्धि ऐसे वीतरागमार्ग को। यहाँ सर्वज्ञ-वीतराग शब्द डाला है। आहाहा! जिन्हें तीन काल—तीन लोक एक समय के सूक्ष्म काल में जानने में आ गये हैं, ऐसे सर्वज्ञ वीतराग, उनका जो कहा हुआ मार्ग, उसकी कोई निन्दा करे... आहाहा! वह कोई भगवान को माने नहीं। भगवान माने तो कहे, राग होता है। यह गजब... समझ में आया? ऐसे **सर्वज्ञवीतराग के मार्ग को—निन्दते हैं, उन स्वरूपविकल (स्वरूपप्राप्ति रहित)...** विकलेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय नहीं होते? दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, यह विकलेन्द्रिय है। पूरी पाँच इन्द्रिय रहित। स्वरूप प्राप्ति रहित। जिसे चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द अखण्डानन्द स्वरूप की प्राप्ति जिन्हें नहीं, और ऐसे मिथ्या श्रद्धा-ज्ञान की प्राप्ति उन्हें है। आहाहा!

ऐसे **जीवों के कुहेतु...** मिथ्या हेतु दे। **कुदृष्टान्त...** इसे खोटे दृष्टान्त दे। समझ में आया? ऐसे कुहेतु और कुदृष्टान्त सहित कुतर्क। अपने दृष्टान्त दे। ऐसा होता है, अमुक होता है, बहुतों को तिराया है, मोक्षमार्ग में लग गये। अकेला रहे, अकेला रहे, वह तो स्वार्थ का पुतला कहलाता है। परमार्थ करे, वह बड़ा परमार्थी कहलाता है। ऐई! कितनी गौशालाओं में रुकना नहीं पड़ा होगा? तब सबके काका किसके कहलाते होंगे? किसी के काम किये होंगे तब... आहाहा! तब और तुम कहते हो कि तुमसे कुछ नहीं होता तथा और कहो कि दूसरे को समझाने खड़े हुए। तुम्हारा सुमेल कहाँ है इसमें कुछ? ऐई! तुम कहो कि किसी से किसी का कुछ नहीं होता। और कहे कि हम तुम्हें समझाते हैं। इसमें

तुम्हारा कुछ मेल कहाँ है ? मावाणी ! ऐसे तो विरोध करते हैं। तुम कहो कि मौन रहने में लाभ है। और वापस बोलने की बातें तुम करो। इसमें तुम्हारा मेल कहा है ? ऐई ! भीखाभाई ! ऐसे कुहेतु रखकर और कुदृष्टान्त देकर और कुतर्कों के वचन बोलते हैं। समझ में आया ? इसमें और तुम कहते हो कि क्रमबद्ध होता है। और तुम समझाकर उसका क्रमबद्ध बदला डालते हो। यह कहते हैं न, कुतर्क रखकर कुतर्क करते हैं। यह... दृष्टान्त देकर कुतर्क करे। समझ में आया ? जिस समय में जो पर्याय...

मुमुक्षु : ....बराबर लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ... ऐसी लगे उसे। उसके काल में उसकी पर्याय होगी तो फिर तुम उसे ऐसा कर-इस प्रकार समझाने में किसलिए व्यर्थ में लगे हो ? कहो, समझ में आया ? परन्तु भाई ! वाणी के काल में वाणी निकली, वह वापस ले न साथ में। और विकल्प के काल में विकल्प आया और जानता है कि यह विकल्प और वाणी है, वह जानने के काल में ज्ञान की पर्याय का स्वभाव वह जानने का था। समझ में आया ? आहाहा ! यह गजब मार्ग है। उसने कहा न, देखो ! फूलचन्दजी कहते हैं, देखो ! हमने यह किया है। सोनगढ़ मानता नहीं। सोनगढ़ कहे कि कर नहीं सकता। देखो ! ऐसा लिखा है कि यह मैं करता हूँ। जैन तत्त्व मीमांसा। अरे ! भगवान ! क्या करता है ? भाई ! यह तो तेरा कुहेतु है। समझाने की पर की भाषा तो ऐसी ही आती है। समझ में आया ? तुम समझाते हो न। परन्तु तुम क्रमबद्ध मानते नहीं और पर का कर नहीं सकता, ऐसा भी मानते नहीं। यह तो सोनगढ़ कहता है, ऐसा वे मानते नहीं। आहाहा !

कुहेतु-कुदृष्टान्तयुक्त... वापस दृष्टान्त देवे उसके जैसा। वह अपने आप हो जाता है ? लो, इस दीपक को तुम ऐसे चांप मारो प्रकाश होता है, एकदम। किसलिए खड़े हुए ? अपने आप होगा नहीं ? होने दो अपने आप। चांप नहीं देना। वहाँ तो खड़े होकर ऐसे दबाओ तब दीपक होता है। एक ओर मानते हो कि नहीं होता कहे और फिर कहे कि हम करते हैं तो होता है। इन दो में तुम्हारा मेल कहाँ है ? ऐई ! वजुभाई ! आहाहा ! ऐसे स्वरूपविकल जीवों के, भाई ! उसे खबर नहीं। वह कुहेतु रखेगा, कुदृष्टान्त का उदाहरण भी, उसे मेल आवे ऐसा कहेगा। यह पंचाध्यायी में कहा है, नहीं ? नयाभास। नयाभास में कहा है। कुदृष्टान्त, यह उदाहरण-दृष्टान्त देकर सिद्ध करेगा। परन्तु कुनय है, वह कुनय है।

ऐसे **कुतर्कवचन सुनकर जिनेश्वरप्रणीत...** वीतराग परमेश्वर (पद) जिसने प्राप्त किया है, उनका कहा हुआ— जिनेश्वरप्रणीत—वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर प्रणीत, उन्होंने कहा हुआ **शुद्धरत्नत्रयमार्ग...** देखो! यहाँ लिया अकेला। दो थे वह बतलाया। इस **शुद्धरत्नत्रयमार्ग के प्रति,...** शुद्धरत्नत्रयमार्ग, शुद्धरत्नत्रयमार्ग। अकेला स्व के प्रयोजन का मार्ग। जिसमें आत्मा अपना ही कर सकता है, पर का कुछ भी जरा भी नहीं। उसी प्रकार पर से कुछ जरा भी ले नहीं। ऐसा जो शुद्धरत्नत्रय, सर्वज्ञ ने कहा हुआ मार्ग, उसके प्रति **हे भव्य! अभक्ति नहीं करना,...** ऐसा मार्ग होवे तो ऐसे निन्दा करनेवालों के इतने सब झुण्ड क्यों निकलते हैं? ऐसा मानना नहीं। वह तो ऐसा ही होता है। भगवान ने कहा हुआ मार्ग, उसमें अभक्ति करना नहीं। आहाहा! समझ में आया? पूरी दुनिया कदाचित् डोल उठे परन्तु सत्य से हटना नहीं, भाई! उसमें क्या होगा? इसमें कुछ होगा? वे सब इतने बड़े-बड़े पण्डित और यह... एक व्यक्ति अभी कहता था, कि ऐसे बड़े महाराज कहलायें, वे सब मिथ्या कहते होंगे? उन्होंने बाह्य त्याग के आधार से कीमत की हो न, इसलिए वे बड़े कहलाते हैं।

संसार में रहे होने पर भी, स्त्री-पुत्र में रहे दिखने पर भी समकिती उसे छोटे लगते हैं। समकिती जीव उसे छोटे लगते हैं। वे (बाह्य त्यागी) बड़े लगते हैं। ऐसा त्याग। स्त्री-पुत्र, राजपाट छोड़ा, व्यापार-धन्धा छोड़ा और ऐसे त्यागी हुए, उनके वचन मान्य हो या नहीं? अब सुन न! वहाँ उसने मिथ्यात्व का त्याग किया ही कब है? उसने तो समकित का त्याग किया है। उसके वचन बड़े—उसे बड़ा मानना, वह तो तेरी भूल है। समझ में आया?

जिनेश्वरप्रणीत... वीतराग ने कहा हुआ मार्ग **शुद्धरत्नत्रयमार्ग...** एक ही कहा है, देखो! पाठ में जिनमार्ग है न? '**मा कुणह जिणमग्गे।**' वीतरागी भगवान आत्मा, उसके आश्रय की दृष्टि, ज्ञान और चारित्र में प्रेम नहीं छोड़ना। अभक्ति नहीं करना, एक ही होवे तो भी बस है। सत्य को संख्या की आवश्यकता नहीं है। मात्र हाँ करनेवाले बहुत मिलें तो यह सत्य कहलाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! **परन्तु भक्ति कर्तव्य है।** भक्ति से लिया है। दुनिया के कुहेतु, कुदृष्टान्तयुक्त कुतर्क के वचन, कुतर्क के वचन। यह कहते हैं कि केवलज्ञानी के हिसाब से सब जीवों में क्रमबद्ध होता है परन्तु श्रुतज्ञानी ऐसा माने, किन्तु

उसमें आचरण के लिये ऐसा नहीं होता। श्रुतज्ञानी कहता है कि मैं पुरुषार्थ करूँ तद्नुसार होगा। परन्तु पुरुषार्थानुसार होगा, यह भी भगवान ने देखा नहीं उसमें? आहाहा! समझ में आया?

एक व्यक्ति ललितपुर का ऐसा कहता था, यह तुम्हारी बात है, वह एकाध को बैठे ऐसी है। पण्डितजी तुम थे? महेन्द्रकुमार बोला .... था। वह भी थे। रामजीभाई, बहुत चर्चा हुई थी। एक दूसरा था। ललितपुर का था। वह कहता है, यह बात तो तुम्हारी एकाध को बैठे। परन्तु एकाध को बैठे किन्तु सत् है या नहीं अब? एकाध को बैठे, न बैठे, उसका तुझे क्या काम था? न बैठे तो क्या हो गया? एक पण्डित था, पण्डित। गुजर गया। छोटी उम्र में गुजर गया।

अरे रे! बापू! ऐसा काल आया। विचार किया नहीं। करने का कुछ और कर बैठे कुछ। अरे! आँखें बन्द हो जाएगी और जाएगा। अंधेरे कमरे में जाकर चौरासी के अवतार में कहाँ अवतरित होगा? बापू! इसलिए यह अवतार छूटने की बात, स्व के आश्रय की मार्ग की क्रिया, वह अन्तर की क्रिया, वह जिसे नहीं बैठती, वह ईर्ष्या से निन्दा करता है। समझ में आया? भक्ति करना, भाई! आहाहा! अर्थात् कि भगवान पूर्णानन्द स्वरूप की रुचि, ज्ञान और रमणता करना। उसमें शिथिलता आने नहीं देना, ऐसा कहते हैं। अभक्ति नहीं करना। समझ में आया? भक्ति करना। टीकाकार श्लोक कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)